

बिहार में पंचायती राज व्यवस्था: सहभागिता एवं विकास का एक अध्ययन

डॉ० विकास कुमार

vikashkr1380@gmail.com

सारांश

वर्तमान उदारिकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण के इस युग में जब सूचना प्रदाता साधन तथा मोबाइल, टी.वी., रेडियो के माध्यम से सामाजिक संबंधों की लम्बाई कम हो चुकी है व संबंधों की बारम्बार अंतःक्रिया में वर्षा हो चुकी है, महिलाओं का मोहरा बनना वास्तव में अपवाद ही कहा जायेगा और इस अपवाद का पूर्ण रूपेण दोष, यदि अन्य परिस्थितियाँ गड़बड़ न हो, तो महिला को दिया जा सकता है, परन्तु मात्र उसे ही नहीं दिया जायेगा, बल्कि उसकी परिस्थितियों को भी दोषों का सहभागी बनना होगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि पंचायती व्यवस्था या अधिक व्यापक त्रिस्तरीय पंचायती व्यवस्था ने महिलाओं में जागृति उत्पन्न ही नहीं की बल्कि महिलाओं ने निर्वाचन प्रक्रिया के माध्यम से उस जागृति को महसूस भी किया है। यह महसूस करना छोटी नहीं, बल्कि बहुत बड़ी उपलब्धि है।

173877 वर्ग किमी क्षेत्र में फैला बिहार (झारखंड बनने से पूर्व) भारत का पाँचवा बड़ा राज्य है। देश की आबादी का दसवां हिस्सा (86347000) यहीं रहता है और इस प्रकार यह उत्तर प्रदेश के बाद सबसे घनी आबादी वाला दूसरा राज्य बन जाता है। तदनुसार उत्तर प्रदेश और बिहार मिलकर केंद्र में सरकार की बनावट तय कर सकते हैं। मानवीय और प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध इस राज्य का प्राचीन इतिहास में गौरवमय पहचान है और स्वतंत्रता संग्राम में इस राज्य ने भी अग्रणी भूमिका निभाई है।

आजादी के बाद करीब-करीब 1960 तक बिहार भारत के अन्य राज्यों के साथ ही विकसित हो रहा था। लेकिन धीरे-धीरे विकास के क्षेत्र में वह पीछे छूटता गया। आजादी के बाद बिहार को जो राजनैतिक नेतृत्व मिला, वह कुल मिलाकर यथास्थितिवादी था। शायद यही वजह है कि बिहार में भूमि सुधार की गति अन्य राज्यों की अपेक्षा न सिर्फ धीमी रही, बल्कि कुशलतापूर्वक

उनका कार्यान्वयन भी नहीं हुआ। ऊँची जाति के बड़े-बड़े लोगों के पास जमींदारी-प्रथा के उन्मूलन के बावजूद काफी जमीनें थीं, जिन पर उतना उत्पादन नहीं होता था, क्योंकि वे सब जमीन से अनुपस्थित लोग थे।

दूसरा मुख्य कारण उद्योगों का समुचित विकास नहीं हो पाना है। पूरे उत्तरी बिहार में कोई भी बड़ा उद्योग नहीं लग पाया। जो पुराने उद्योग थे, चीनी और जूट मिल, वे भी धीरे-धीरे एक-एक करके बंद होते गये। इसलिए हम कह सकते हैं कि औद्योगीकरण की प्रक्रिया एक तरह से बिहार में शुरू ही नहीं हुई। नये उद्योगों के बिना रोजगार घटता गया और धीरे-धीरे वहाँ से बड़े पैमाने पर पलायन की स्थिति बढ़ती गयी, जिससे वहाँ के खेतिहर मजदूर बड़ी संख्या में राज्य के बाहरी प्रदेशों में जाने लगे। आज जब हम बिहार के संकट पर विचार करते हैं, तो मुझे लगता है कि यह एक बहुआयामी संकट है, जहाँ आर्थिक पिछड़ेपन का सवाल सबसे अहम है। लेकिन उसके साथ-साथ और

राजनीति विज्ञान, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

कई ऐसे सवाल हैं, जिनको हमें गंभीरता से समझने की जरूरत है। आर्थिक पिछड़ेपन के कारण कई हो सकते हैं, लेकिन सबसे बड़ा कारण यह है कि राजनैतिक नेतृत्व ने इस चुनौती को कभी भी स्वीकार नहीं किया।¹

विकास : सैद्धान्तिक पहलू

विकास एक बहुआयामी अवधारणा है। इसके अन्तर्गत अनेक पहलू सन्निहित हैं, जैसे-क्षमताओं का उन्नयन, शिक्षा का प्रसार, नियोजन के अवसर का निर्माण, कृषिजन्य एवं औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि तथा सामान्य जनजीवन के स्तर में उन्नति इत्यादि। इस प्रकार विकास का दायरा काफी वृहद है जिसके अन्तर्गत मॉस्लाव की आवश्यकताओं के श्रेणीक्रम की आरम्भिक शारीरिक आवश्यकता से लेकर आत्मसम्मान एवं आत्मयथार्थीकरण की आवश्यकता की तुष्टि के स्रोतों को सम्मिलित किया जा सकता है।

विकास के दो पक्ष हैं हार्डवेयर विकास एवं सॉफ्टवेयर विकास। हार्डवेयर विकास के उदाहरण हैं- मशीन, फैक्ट्री, प्रौद्योगिकी विकास इत्यादि। सॉफ्टवेयर विकास के उदाहरण हैं- शिक्षा, स्वास्थ्य, नियोजन के अवसर का विकास इत्यादि। विकास के ये दोनों पक्ष पृथक्-पृथक् होते हुए भी परस्पर अंतर सम्बन्धित हैं तथा एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। हार्डवेयर विकास के उचित आचारक्रम व व्यवस्थापन पर सॉफ्टवेयर विकास का स्वरूप आधारित है।² अन्तरराष्ट्रीय विकास की समालोचना में यह कहा गया है कि मनुष्य पर निर्भरता एवं विश्वसनीयता के परिणामस्वरूप सॉफ्टवेयर विकास में वृद्धि होती है, जैसे-कुशलता के रूप में स्वास्थ्य, ज्ञान के निःशुल्क प्रयोग के रूप में शिक्षा तथा आत्मनिर्भरता के साधन के रूप में नियोजन का विकास इत्यादि। विकास की अवधारणा एक गतिशील प्रक्रिया का बोध कराती है। इस प्रक्रिया में एक स्थान एवं समय विशेष में विकास के मूल्यांकन के आधार दूसरे समय व स्थान के आधारों से भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। यह भिन्नता भौतिक एवं अभौतिक तत्वों अथवा मात्रात्मक एवं गुणात्मक आधारों पर परिलक्षित की जा सकती है।³

विकास को निष्पादन और उत्पादकता अथवा न्याय और समानता के आदर्शों की सहायता से मापा जा सकता है। ग्रामीण समाज वैज्ञानिकों ने भी महसूस किया है कि सामाजिक, सांस्कृतिक विकास के बिना आर्थिक विकास अधूरा है। ग्रामीण विकास को समझने के लिए अनेक सूचक हैं- गुणात्मक व विस्तृत साक्षरता, उच्च स्तरीय संचार माध्यम, ग्रामीण क्षेत्र का औद्योगीकरण, प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि, व्यक्तियों की सभी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं में संलग्नता। विकास का आशय परिवर्तन के उस पक्ष से है, जो अभीष्ट व नियोजित हो। रिग्स ने विकास को विवर्तन के उभरते स्तर द्वारा संभाव्य सामाजिक प्रणालियों की वर्तमान स्वायत्तता तथा विवेक की प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है।⁴

विकास के दो मॉडल हैं, सुधारात्मक मॉडल व मौलिक स्वरूप। सुधारात्मक स्वरूप के अन्तर्गत संस्थागत सुधारों, विकास कार्यक्रमों तथा विकासमूलक संस्थाओं की स्थापना आदि पर बल दिया जाता है। इसके अन्तर्गत परिवर्तन एवं विकास की गति अपेक्षाकृत धीमी होती है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में पंचवर्षीय योजनाएँ, पंचायती राज, सामुदायिक विकास योजना तथा समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम इत्यादि विकास के सुधारात्मक स्वरूप के अन्तर्गत अपनाये जाने वाले सरकारी प्रयास के उदाहरण हैं। दूसरी ओर मौलिक स्वरूप के अन्तर्गत बुनियादी संरचनात्मक परिवर्तन पर बल दिया जाता है। इसमें विकास स्पष्ट व तीव्र परिलक्षित होता है। इसके अन्तर्गत उत्पादन के स्वरूप में परिवर्तन को विकास का प्रमुख आधार माना जाता है। रूस की वोल्सेविक क्रांति तथा चीन की सांस्कृतिक क्रांति मौलिक स्वरूप की संकल्पनाओं पर आधारित विकास के उदाहरण हैं। किसी राष्ट्र विशेष में विकास के अन्तर्गत ऐसे विकास लक्ष्यों यथा साक्षरता का विकास, स्वास्थ्य एवं पोषण में सुधार सीमित परिवार का विचार अथवा उत्पादकता में वृद्धि की एक सहक्रिया निहित होती है। विकास समस्याओं की यथार्थ प्रवृत्ति एक देश से दूसरे देश में भिन्न होती है। यह भिन्नता राष्ट्रों की विशिष्ट आर्थिक

सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक लक्षणों और विशेषताओं पर निर्भर होती है। तृतीय विश्व के प्रत्येक देश में राष्ट्रीय सरकार की सर्वोपरि प्राथमिकता विकास है, पर विकास हेतु निर्देशित सामाजिक परिवर्तन के लक्ष्यों में मतैक्य का अभाव है। साथ ही इन लक्ष्यों की प्राप्ति के तरीकों में भी एकमत नहीं है। वस्तुतः प्रगतिशील राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक लक्ष्यों की उपलब्धि हेतु नूतन और सतत् परिवर्तनों के साथ तादात्म्य बनाये रखने की प्रणाली की क्षमता में वांछित वृद्धि को अर्जित करने की प्रक्रिया ही विकास है।⁵

विकास का सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

सैद्धान्तिक दृष्टि से विकास की अवधारणा का विश्लेषण समाज वैज्ञानिकों ने विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर किया है। प्रथम दृष्टिकोण में विशिष्ट संकल्पनात्मक सूचकों को आधार बनाकर विकास की व्याख्या की गयी है जैसे कुल राष्ट्रीय उत्पादन, प्रतिव्यक्ति आय, कैलोरी की मात्रा, आवास की दशा, जन्म एवं मृत्यु दर, स्वास्थ्य व शिक्षा का स्तर इत्यादि। इस दृष्टिकोण के दो प्रारूप हैं एक, प्रतिमान परिवर्त्य अभिगम तथा दूसरा, ऐतिहासिक स्तरों का अभिगम। प्रतिमान परिवर्त्य अभिगम का उद्भव मैक्सवेबर के आदर्श प्रारूप की अवधारणा तथा उसके द्वारा विश्लेषित कुछ संकल्पनात्मक प्रारूपों के आधार पर हुआ है, जिसे पार्सन्स ने अपने पांच प्रतिमान परिवर्त्यों के विश्लेषण में व्यवस्थित किया है। ऐतिहासिक स्तर के अभिगम का प्रतिपादन रोस्टोव ने किया, जिसने विकसित व अविकसित समाजों के अन्तराल को विभिन्न ऐतिहासिक चरणों की विशेषताओं के अनुरूप विश्लेषित किया है। रोस्टोव सभी समाजों की अर्थव्यवस्था को पांच चरणों में विश्लेषित करते हैं- परम्परागत, प्री-टेक ऑफ, टेक आफ, परिपक्वता एवं बहुजन उपभोग का चरण। रोस्टोव के अनुसार अविकसित समाज सामान्यतया परम्परागत अथवा प्री-टेक आफ स्तर के होते हैं। टेक आफ स्तर पर पहुँचने के लिए अविकसित समाजों को विकसित देशों से विविध सहायता एवं अनुदान की आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार इस दृष्टिकोण के दोनों प्रारूपों में

विकास की अवधारणा का प्रत्यक्षीकरण, विशिष्ट संकल्पनात्मक सूचकों के आधार पर किया गया है। प्रसारवादी दृष्टिकोण के समर्थक इलियट स्मिथ, डब्लू जे. पेरी, ग्रेबनर, अंकरमैन, फेजर क्लाक आदि में यद्यपि संस्कृति के उद्भव स्थल के प्रति मतवैभिन्य परिलक्षित होता है, परन्तु इनकी सामान्य धारणा यह है कि विकास मूलतः प्रसार के परिणामस्वरूप होता है।⁶

ग्रामीण विकास का फ्रेमवर्क

भारत एक कृषि एवं ग्राम प्रधान देश है, जहाँ की अधिकांश जनसंख्या गांवों में निवास करती है इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों एवं उनमें निवास करने वाले लोगों का विकास किये बिना राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक, विकास की कल्पना करना अर्थहीन है। दुर्भाग्य से भारत का ग्रामीण जीवन एक लम्बी अवधि तक उपेक्षित एवं शोषित रहा। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारत के कुल राष्ट्रीय आय में कृषि आय का महत्वपूर्ण योगदान है, तथा बहुसंख्यक श्रमिक कृषि व उससे सम्बद्ध आर्थिक गतिविधियों में संलग्न होते हैं। ऐसी स्थिति में ग्रामीण विकास स्पष्ट रूप से महत्वपूर्ण हो जाता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने असंख्यबार दोहराया कि भारत अपने कुछ शहरों में नहीं बल्कि लाखों गांवों में निवास करता है एवं इनका सामाजिक आर्थिक विकास ही राष्ट्रीय प्रगति का प्रतीक है।⁷

ग्रामीण नगरीय विषमता की भांति गांवों में अन्तर्वर्गीय विषमता में भी वृद्धि हुई है। नेहरू जी ने 1958 में कहा था कि यदि पूँजीवादी सामंती व्यवस्था को स्वतंत्र रूप से कार्य करने दिया जाये तो गरीब और गरीब और मुठठी भर धनी और ज्यादा धनी हो जायेंगे। इसलिए राज्य का हस्तक्षेप एक सही कदम है। सरकार ने विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत विभिन्न योजनाओं के माध्यम से क्षेत्रीय एवं वर्गीय विषमताओं को दूर करने तथा सामाजिक न्याय की दिशा में प्रयास किये, परन्तु इनके वांछित परिणाम अनेकानेक कारणों से संतोषप्रद नहीं रहे, इनका लाभ गरीबों की अपेक्षा सुविधा सम्पन्न लोगों को अधिक मिला। सामान्यतः गरीबी वर्गीय एवं क्षेत्रीय समस्या नहीं है, जो कि वर्गीय या क्षेत्रीय नीति

से हल किया जा सके, गरीबी सम्पूर्ण व्यवस्था का परिणाम है, जो आर्थिक, प्रौद्योगिकी, सामाजिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक शक्तियों के साधारण जनता के पक्ष में सोद्देश्य पुनर्गठित किये बिना समाप्त नहीं की जा सकती।

बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में पुरातन बेड़ियाँ, संकुचित स्वार्थ, शिक्षा के निहित भ्रष्टाचार ने निर्वाचित महिलाओं को अपनी भूमिका निभाने से रोका नहीं, बल्कि रोकने का प्रयत्न किया है। प्रत्येक सफल पुरुष के पीछे एक स्त्री का हाथ होता है परन्तु निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के स्तर पर यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक नहीं तो अधिकांश महिला निर्वाचित प्रतिनिधियों के पीछे पुरुष का हाथ है अर्थात् मात्र सवैधानिक आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये अधिकांश परिवार महिलाओं को आगे बढ़ा रहे हैं। क्या यह संविधान के साथ धोखा नहीं है? सभी इस तथ्य से अवगत है, किन्तु भारतीय नीति नियन्त्राओं के समक्ष विकल्प की अनुपलब्धता या स्पष्टतः किंकर्तव्यविमूढता की स्थिति है। यहाँ हमें समझना होगा कि निर्वाचित महिला प्रतिनिधि या समस्त बाधाओं को समग्र रूप से दृष्टिगत कर उनके सुधार हेतु प्रयत्न किये जायें।

भारत में सांस्कृतिक जड़ें इतनी गहन रूप से अन्तर्विष्ट हैं कि पति-पत्नी के संबंधों को अविद्योयतः अंतःसंबंधित स्वीकार किया तथा प्रोत्साहित किया ही नहीं जाता, बल्कि उसके स्थायित्व के लिये विभिन्न संस्कारों, सामाजिक प्रतिमानों, लोक कथाओं के साथ-साथ कानूनी प्रावधानों को भी निर्मित किया जाता है। ऐसी दशा में महिला राजनीतिक निर्णय लेने में कितनी सक्षम है अथवा कितनी सक्षम हो सकेगी, सक्षम होगी तो भी तो कितना प्रभावी रूप से सक्षम होगी? निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के राजनीतिक निर्णयों को सात जन्मों के साथी (पति) द्वारा प्रभावित न करने की बात मूर्ख ही सोच सकता है। पश्चिमी जगत में स्थिति सांस्कृतिक परिवेश के कारण भिन्न है, परन्तु भारत में ग्रामीण स्तर पर लगभग प्रत्येक राजनीतिक निर्णयों को पति अथवा संयुक्त परिवार का प्रभु सदस्य प्रभावित ही

नहीं करता, अपितु अंतिम निर्णयकर्ता की भूमिका निभाता है। यदि महिलाएँ अपनी सलाह अथवा अंतरात्मा के आधार पर निर्णय करने लगती हैं, तो वैवाहिक संबंधों पर खतरा तथा परिवार से उसके निष्कासन की संभावना बनती है और प्रत्येक महिला (कुछ को छोड़कर) जो वस्तुतः महिला जागृति के प्रति सचेष्ट तथा कर्तव्यनिष्ठ होती है, ऐसी स्थिति को जन्म नहीं देना चाहती है।

एक रूप से महिलाओं का स्वतंत्र निर्णय लेना ठीक है भी नहीं क्योंकि परदे के पीछे कार्यरत महिलाओं को भारतीय पुरुष सत्तात्मक समाज की वास्तविकता, जो वस्तुतः चालबाजी या धूर्तता से परिपूर्ण व दावपेंचों से युक्त है, को समझना उनके लिये दुश्कर होने के साथ-साथ घातक भी सिद्ध हो सकता है। प्रत्येक ग्रामीण स्थानीय चुनाव की समय सीमा के बाद बिहार में व्यापक स्तर पर हिंसा, हत्या तथा क्रोध सम्मिश्रित ईर्ष्या का वातावरण निर्मित होता है। क्या महिला प्रतिनिधि ऐसी परिस्थिति को झेलने में सक्षम है? शायद नहीं किन्तु ऐसी स्थिति से घबराकर नवाचारीय विचारोत्तेजक पुरुष अथवा महिला, समाज को बदलने का लक्ष्य नहीं छोड़ सकते। प्रत्येक समाज में एक निश्चित समय में ऐसे योग्य व्यक्ति, प्रज्ञावान विचारक सदैव उपस्थित रहते हैं, जो वर्तमान प्रचलित स्थिति के दोषों के कारण उसे परिवर्तित करना चाहते हैं। ऐसे परिवारों की महिलाएँ ग्रामीण या शहरी क्षेत्रों में, स्वतंत्र राजनीतिक निर्णय लेने में सक्षम होती हैं तथा मीडिया, राजनीतिक दल, समाज सुधारक भी ऐसी ही महिलाओं को प्रस्तुत व प्रचारित करते हैं जो भारतीय लोकतांत्रिक भावना के अनुरूप उच्चतम आदर्श स्थापित करती है।

वर्तमान उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण के इस युग में जब सूचना प्रदाता साधन तथा मोबाइल, टी.वी., रेडियो के माध्यम से सामाजिक संबंधों की लम्बाई कम हो चुकी है व संबंधों की बारम्बार अंतःक्रिया में वृद्धि हो चुकी है, महिलाओं का मोहरा बनना वास्तव में अपवाद ही कहा जायेगा और इस अपवाद का पूर्ण रूपेण दोष, यदि अन्य परिस्थितियाँ गड़बड़ न हो, तो

महिला को दिया जा सकता है, परन्तु मात्र उसे ही नहीं दिया जायेगा, बल्कि उसकी परिस्थितियों को भी दोषों का सहभागी बनना होगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि पंचायती व्यवस्था या अधिक व्यापकतः त्रिस्तरीय पंचायती व्यवस्था ने महिलाओं में जागृति उत्पन्न ही नहीं की बल्कि महिलाओं ने निर्वाचन प्रक्रिया के माध्यम से उस जागृति को महसूस भी किया है।

मैकाइवर⁸ ने समाज को सामाजिक संबंधों का जाल कहा है, समाज रूपी जाल में महिला, पुरुष, वृद्धि, बालक, संबंधों के माध्यम से बंधे नहीं अपितु गुथे हुए हैं। यह निर्धारण करना कि महिलाओं से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों अथवा सरकारी प्रयासों से महिलाओं की परिस्थिति में सुधार की बात न भी की जाए, तो परिवर्तन हुआ है कि नहीं, का निर्धारण एक विशिष्ट साहस का कार्य है। भारत में राजनीतिक सहभागिता बढ़ाने के माध्यम से महिलाओं की परिस्थिति को सुधारने का प्रयास जारी है। सुधारना शब्द का प्रयोग न कि 'सशक्ता' का प्रयोग इसलिए किया गया क्योंकि भारतीय महिलाओं की स्थिति पुरुषों के सापेक्ष, आज भी सामान्यतः हीन ही है। सुधारने के उपरान्त सशक्ता का प्रश्न उठाया जा सकता है। परिणाम का मूल्यांकन भविष्य में ही संभव है।

निष्कर्ष:

पंचायतों के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह है कि समावेशी विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति कैसे की जाए? पंचायतों द्वारा कार्यान्वित की जा रही योजनाओं का अपेक्षित लाभ वास्तविक लाभार्थियों तक कैसे पहुँचाया जाए? किसी भी लाभार्थी के जीवन स्तर में दृश्यमान उन्नयन के लिए विकास की समेकित अवधारणा को कैसे मूर्त रूप दिया जाए। सार्वजनिक निधि के दुरुपयोग को कैसे नियंत्रित किया जाए। आवश्यक है कि पंचायत प्रतिनिधियों में ऐसी समझदारी विकसित की जाए कि वे समर्पित समाजसेवी के रूप में गरीब महिलाओं को संगठनात्मक शक्ति के लाभ तथा बेहतर वित्तीय प्रबन्धन के महत्व से अवगत कराएँ ताकि वे

सफल उद्यमी बन सकें। प्रयास किया जाए कि लाभार्थियों को विभिन्न विकास योजनाओं (रोजगार गारंटी योजना, शिक्षा गारंटी योजना, समन्वित बाल विकास योजना, खाद्य सुरक्षा योजना, स्वास्थ्य सुविधा योजना, ऋण तथा विपणन सुविधा आदि) का समेकित लाभ उपलब्ध हो सके। अन्य योजनाओं से समन्वय स्थापित कर सार्वजनिक निर्माण कार्य यथा-पुस्तकालय, सामुदायिक भवन, उद्यमिता विकास केन्द्र, पक्की नाली, भंडारण सुविधा आदि के लिए संसाधन एकत्रित कर सतत् विकास की नींव मजबूत की जा सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. सिंह, मोहिंदर, रूरल डेवलपमेण्ट इन इण्डिया, करेण्ट पर्सपेक्टिव इन्टीलेक्चुअल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1992, पृ. 6.
2. डॉ० त्रिपाठी, सत्येन्द्र एवं त्रिवेदी कृष्णादत्त विकास का समाज शास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1988, पृ. 25.
3. सिंघल, अरविंद, 'इवोल्यूशन ऑफ डेवलपमेण्ट एण्ड डेवलपमेण्ट एडमिनिस्ट्रेशन थ्योरी' दि इण्डियन जर्नल आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, अक्टूबर-दिसम्बर, 1989, पृ. 841.
4. उपरोक्त.
5. पाण्डेय, प्रेम नारायण, ग्रामीण विकास व संरचनात्मक परिवर्तन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2000, पृ. 18.
6. सिंह, होशियार, "एप्रोचेज टू रूरल डेवलपमेण्ट एन इवोल्यूएटिव सर्वे", इन सिंह, होशियार (एडिटेड), रूरल डेवलपमेण्ट इन इण्डिया, प्रिंटवेल पब्लिकेशन, 1985, पृ. 9-15.
7. सिंह, राजेश्वर प्रसाद, रूरल डेवलपमेंट एंड पंचायती राज इन इंडिया, जानकी प्रकाशन, पटना, 2007, पृ. 33-39.
8. उद्धत हिमांशु सिंह एंड संजना मेहता, पंचायती राज इन रूरल इंडिया, अर्जुन पब्लिशिंग, न्यू दिल्ली, 2016, पृ. 103-107.